पूज्य श्री लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार, गाथा १३, ता. ०५-०४-१९८९
भिण्ड, प्रवचन P ०६

यह श्री समयसार परमागम शास्त्र है। उसके जीव नाम के प्रथम अधिकार में १३ नंबर की गाथा, वो चलती है। उसका स्वाध्याय चलता है। आचार्य भगवान (ने बताया कि) अनादिकाल से जो अज्ञानी प्राणी का लक्ष्य पर ऊपर है, स्व ऊपर, यानि अपने पर लक्ष्य हुआ, ज्ञायक ज्ञानानंद आत्मा पर लक्ष्य आता नहीं है, तो जहाँ तक निमित्त का लक्ष्य रहता है, वहाँ तक नवतत्त्व की उत्पत्ति हो जाती है। और नवतत्त्व की उत्पत्ति होने से, अपना शुद्धात्मा उसमें तिरोभूत हो जाता है। होने पर भी दिखाई नहीं देता है। नवतत्त्व की उत्पत्ति कैसे हो और उत्पत्ति होने पर भी, उससे भिन्न आत्मा कैसा है, कैसा है और कैसे, कैसे यह दृष्टि में आ जावे? बात तो, मैं तो मेरी भाषा तो गुजराती है। ऐसी हिंदी भाषा तो है नहीं, जो आप सबको...

मुमुक्षुः- सबको समझ में आती है।

उत्तरः- हाँ, नहीं तो, छूट मिले तो मैं गुजराती में बोलूँ।

आहाहा! बाह्य दृष्टि से बात आ गयी। एक दूसरी बात आचार्य भगवान समझाते हैं। अपन तो आचार्य भगवान को सुनने के लिये इधर इकट्ठे हुए हैं। ये लालचंदभाई को सुनने के लिए ये मुमुक्षु नहीं (आये) हैं। आचार्य भगवान क्या फ़रमाते हैं? इस शास्त्र में आत्मा का स्वरूप क्या है? शास्त्र में पर्याय का स्वरूप क्या है? शास्त्र में त्रिकाली उपादान का स्वरूप क्या है और उसका लक्षण क्या है? और शास्त्र में क्षणिक-उपादान का स्वरूप क्या है और उसका लक्षण क्या है? और आगम में निमित्त के लक्ष्य से नैमित्तिक अवस्था होती है, इसका स्वरूप क्या है और इसका लक्षण क्या है? ऐसी कई बात, गूढ़ बात, भाव, इस परमागम शास्त्र में सब भरा है। इसका अर्थ, नहीं समझ में आवे, ऐसा नहीं है। ये अपने लिये इस शास्त्र की रचना की है। मुनि के लिये नहीं है, ज्ञानी के लिए भी नहीं है। केवल अनादि का जो अज्ञानी जीव है, अप्रतिबुद्ध है, यानि जिसको आत्मा का बोध नहीं हुआ है, आत्मा का ज्ञान-भान नहीं हुआ है, उसके लिये यह समयसार शास्त्र की रचना की है। नियमसार शास्त्र को तो अपनी भावना के लिये बनाया। मगर समयसार शास्त्र तो अनादिकाल का अज्ञानी जीव, अपने स्वरूप को समय-समय भूल रहा है, ऐसे अज्ञानी जीव को समझाने के लिए, इस शास्त्र की रचना हो गई है। तो इसमें एक प्रकार दूसरा बताते हैं।

इसीप्रकार अंतर्दृष्टि से देखा जाये तोः- यानि बहिर्द्रष्टि से देखो, तो नवतत्त्व दिखता है। मगर अंतर्दृष्टि से देखो तो, एक ज्ञायकभाव जीव है। बहिर्द्रष्टि से भेद दिखता है, निमित्त दिखता है, पर दिखता है, राग दिखता है, पर्याय दिखती है, गुणभेद दिखता है, वो सब बहिर्द्रष्टि का कार्य है। अंतर्दृष्टि का कार्य तो

अंतर्दृष्टि से देखा जाये तोः- ये शर्त; अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो, 'तो' लिखा है, समझे? उसमें

पुरुषार्थ है। **अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो:- ज्ञायक भाव जीव है।** आहाहा! अकेला ज्ञायकभाव जो अनंतगुण का पिण्ड है, इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनंत-अनंत-अनंत गुण शक्ति अंदर में है। एक-एक गुण बेहद सामर्थ्य से भरा है। छलोछल!

ऐसे अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो:- यानि बहिर्द्रष्टि, इन्द्रियज्ञान को देखना, इन्द्रियज्ञान से देखना, वो बहिर्द्रष्टि है और... क्योंकि इन्द्रियज्ञान जानने का साधन नहीं है। क्या कहा? आत्मा को जानने के लिए इन्द्रियज्ञान साधन नहीं है क्योंकि वह अपनी जाति का परिणाम नहीं है। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमयी है, अनादि-अनंत। तो जिसको ज्ञायकभाव का दर्शन करना हो, तो अंतर्दृष्टि से वो होता है। और अंतर्दृष्टि से देखने से क्या दिखाई देता है, अंदर में? कि एक ज्ञायकभाव जीव है। ये नवतत्त्व जीव नहीं हैं, सचमुच तो अजीव हैं। वो अजीव का विस्तार है। वो आचार्य भगवान ने परमागम में सब बात अजीव अधिकार में कही है। अजीव अधिकार जीव से भी ऊँचा है। अरे! ये क्या? जीव का स्वरूप अस्ति से कहा और अजीव का स्वरूप(अर्थात्) नास्ति से। पर जीव का स्वरूप ही कहा। जीव बताना है, अजीव बताना (नहीं है)।

क्या कहा? अजीव का जो स्वरूप लिखा, तो सभी १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास, ये सब पुद्गलमयी परिणाम हैं। भैया! पुद्गल के संग से उत्पन्न हुआ, तो ये निश्चयनय से तो, ये पुद्गल का भाव है। यानि जीव का विस्तार कभी होता ही नहीं है। विस्तार होता है, विस्तार करो तो जीव नहीं रहेगा, अजीव बन जायेगा।

मुमुक्षु:- वाह! वाह!

उत्तर:- सुरेंद्र भाई!

मुमुक्षु:- हाँ जी!

ये सब शास्त्र की बात मैं बताता हूँ। अजीव अधिकार है। नास्ति से। नास्ति से भी जीव का स्वरूप बताना है कि ये १४ गुणस्थान हैं, मगर वो जीव नहीं है। जीव इससे जुदा है। तो अजीव है। ऐसे **अंतर्दृष्टि से देखो जाये तो:- ज्ञायक भाव जीव है।** जीव एक ही है। जीव का नौ स्वरूप नहीं है। वो तो स्वांग है, स्वभाव नहीं है। आहाहा!

अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो:- ज्ञायक भाव जीव है और जीव के विकार का हेतु अजीव है; जीव का विशेष कार्य, जीव में परिणाम जो होता है, परिणाम, उसका नाम विकार यानि विशेष कार्य। विकार यानि कषाय नहीं, शुभाशुभभाव नहीं, विशेष कार्य। विशेष कार्य में पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, सब विकार हैं। जीव नहीं है, मगर जीव का विशेष कार्य है। आहाहा! **जीव के विकार का हेतु,** हेतु यानि निमित्त-कारण, **अजीव है;** जीव की पर्याय प्रगट होती है। जीव की विशेष कार्य पर्याय प्रगट होती है, वो पर्याय का कारण जीव नहीं है, मगर अजीव है। क्या कहा? पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, उसका कारण तो अजीव है, निमित्त-कारण; मगर संवर, निर्जरा, मोक्ष का, उत्पत्ति का निमित्त-कारण भी भगवानआत्मा नहीं है, अजीव है।

आहाहा! इसमें लिखा है, वह पढ़ता हूँ। देखो! **जीव के विकार का हेतु अजीव है;** शास्त्र जिसके पास है। आप, आपको शास्त्र देवें। नहीं! अच्छा! इसमें लिखा है। **जीव के विकार का हेतु**

विशेष कार्य का हेतु (अजीव है)। परिणाम का कारण आत्मा नहीं है। परिणाम का कर्ता तो आत्मा नहीं है, वो, मगर परिणाम का निमित्त-कारण भी भगवान आत्मा नहीं है, क्योंकि वो नैमित्तिकभाव है। वो स्वाभाविकभाव (नहीं है)। आहाहा! उपादान-कारण तो नहीं है आत्मा। जीव का परिणाम होता है, उसका उत्पादक तो नहीं है। उपादान रूप से तो उपादान-कारण नहीं है, यानि कर्ता नहीं है, मगर निमित्त-कारण भी आत्मा नहीं है। कर्ता नहीं है, कारयिता नहीं है, अनुमोदक नहीं है और कारण भी (नहीं है)। जहाँ कारण आवे वहाँ निमित्त-कारण रखना, पढ़ना। और कर्ता आवे, वहाँ उपादान-कर्ता (रखना)। कर्ता अर्थात् उपादान-कर्ता नहीं है और कारण यानि निमित्त-कारण भी नहीं है, क्योंकि आत्मा तो अनादिकाल का है। जो मोक्ष का कारण आत्मा हो, तो मोक्ष होना चाहिए। और कर्ता हो तो सब (का) मोक्ष कर देवे। मगर जीव का अस्तित्व होने पर भी परिणाम का कारण भगवान आत्मा नहीं है। परिणाम का कारण परिणाम है, क्षणिक-उपादान, और उसका निमित्त-कारण अजीव है, तो नैमित्तिक हो गया। पहले उपादान से देख। बाद में निमित्त के संग से हुआ (ऐसा देख), तो नैमित्तिक हुआ। स्वाभाविक नहीं है पर्याय। स्वभाव तो परमपारिणामिकभाव वाला जीव एक है। वो आत्मा है, जीव तत्त्व है।

ऐसा इसमें लिखा है। देखो! **जीव के विकार का हेतु अजीव है;** हेतु यानि निमित्त-कारण, यानि आत्मा निमित्त नहीं है। जो आत्मा पुण्य-पाप में शुभाशुभभाव में निमित्त होवे, तो नित्य-कारणपना का दोष आवे, नित्य-कर्तापना का दोष आवे। आहाहा! तो कोई, किसी जीव को सम्यग्दर्शन ही न हो और मोक्ष भी (न हो)। नित्य पुण्य-पाप (रूप) ही परिणमन करता रहे, ऐसा है नहीं। **अजीव है; और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध तथा मोक्ष ये जिनके** कारण हैं **लक्षण हैं...** . **जिनके लक्षण हैं ऐसे केवल जीव के विकार हैं...** ये पर्याय का लक्षण है। पुण्य-पाप जीव का लक्षण (नहीं है)। और संवर, निर्जरा, मोक्ष, वो परिणाम का लक्षण है। जीवद्रव्य का लक्षण (नहीं है)।

क्या बात समयसार में, धन्नालालजी साहब! अद्भुत से अद्भुत बात है अंदर! साफ़ लिखा है कि **बंध तथा मोक्ष-ये जिनके लक्षण हैं ऐसे केवल जीव के विकार हैं।** जीव का विकार यानि जीव के विशेष कार्य का लक्षण है। कोई का लक्षण पुण्य-पाप है, कोई का लक्षण आस्रव-बंध है, कोई परिणाम का लक्षण संवर है, कोई परिणाम का लक्षण निर्जरा है और कोई परिणाम का लक्षण (मोक्ष है), तो लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे जीव का लक्षण भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही लक्षण है। आहाहा!

और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध तथा मोक्ष ये विकार हेतु केवल अजीव हैं। एक जीव का परिणाम होने पर भी उसका हेतु, कारण, निमित्त-कारण जीव नहीं है। तो कोई निमित्त-कारण होना चाहिये। उपादान-कारण तो स्वयं पर्याय है। मगर वह परिणाम जो प्रगट होता है, वह जीव के आश्रय से प्रगट नहीं होता है। जीव के कारण से जीव का परिणाम नहीं होता है। परिणाम होता है, अपने कारण। उसी समय जड़कर्म सद्भाव और अभाव रूप निमित्त हो जाता है। यानि निमित्त का संग से नौ का भेद खड़ा हो जाता है।

निमित्त के संग से मत देख, तो नवतत्त्व दिखाई नहीं देगा। अंतर्दृष्टि से ज्ञायकभाव का दर्शन होगा। आहाहा! तू निमित्त का लक्ष्य करता है ना, इसलिए नवतत्त्व तेरे को दिखाई देता है। मगर निमित्त

का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! तो नैमित्तिक-पर्याय की उत्पत्ति ही नहीं होगी, तो ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं होगा। ज्ञान का ज्ञेय तो भगवान आत्मा बन जाएगा। आहाहा!

सुमतिजी! आहाहा! भाई साहब कहते हैं, बहुत सुंदर है, आहाहा! आत्मा के अलावा कोई इस जगत में सुंदर है नहीं और एक आत्मा ही शरण है, बाकी कोई शरण (नहीं है)।

देव-गुरु-शास्त्र शरण नहीं है, तो तेरा कुटुंब कबीला तो शरण कहाँ से आयेगा? आहाहा! परद्रव्य आत्मा को शरण देता नहीं है और आत्मा शरण लेता भी नहीं है। जो पर का शरण लेता है, वह अनात्मा है। आत्मा लेता (नहीं है)। आत्मा तो निरावलम्बी तत्त्व है। किसी का अवलंबन आज तक आत्मा ने नहीं लिया और अभी भी नहीं लेता है। अभी की बात है और भविष्यकाल में अवलंबन लेनेवाला (नहीं है) क्योंकि निरावलंबी तत्त्व है। आहाहा! अवलंबन कौन लेता है? कि सचमुच अजीव, अजीव का अवलंबन लेता है। परद्रव्य, परद्रव्य का अवलंबन लेता है। स्वद्रव्य किसी का अवलंबन लेने वाला (नहीं है)। ये सात तत्त्व के समूह को परद्रव्य कहा है, परभाव कहा है।

अध्यात्म का अभ्यास जीव को नहीं। आगम का अभ्यास कर लेवे, ज़िंदगी पूरी हो जाये और अध्यात्म का, आहाहा! द्रव्यानुयोग का, आहाहा! मोक्षमार्ग प्रकाशक कर्ता ने लिखा कि प्रथम में प्रथम द्रव्यानुयोग का अभ्यास करो। डाक्टर साहब लिखा है?

मुमुक्षुः- हाँ! ये।

उत्तरः- अच्छा! लिखा है तो मानना चाहिए कि नहीं?

मुमुक्षुः- मानना ही चाहिये।

उत्तरः- मानना चाहिये। अच्छा! द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से आत्मा स्वच्छंदी होता है कि स्वतंत्र हो जाता है?

मुमुक्षुः- स्वतंत्र हो जाता है।

उत्तरः- पराधीन-दृष्टि छूट जाती है। स्वाधीन-दृष्टि प्रगट होती है। आहाहा! **ऐसे केवल जीव के विकार हैं और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध तथा मोक्ष ये विकारहेतु केवल अजीव हैं** इधर एक व्यवहार-जीव है। व्यवहार-जीव और सामने व्यवहार-अजीव है। दो व्यवहार हैं। दो ही में, पर्याय में, निमित्त-नैमित्तिक संबंध। निमित्त-नैमित्तिक संबंध परिणाम का पर के साथ होता है। द्रव्य का परिणाम, परपदार्थ के साथ निमित्त-नैमित्तिक है नहीं। आहाहा! आत्मा किसी को निमित्त बनता ही नहीं। आहाहा! और परपदार्थ आत्मा को निमित्त बनता नहीं है। मैं पर का निमित्त नहीं और पर मेरे में निमित्त नहीं है। आहाहा! निमित्त-नैमित्तिक संबंध व्यवहारनय से पर्याय के साथ, पर के साथ होता है, तो नौ भेद उत्पन्न हो जाता है। **विकारहेतु ये केवल अजीव हैं। ऐसे यह नवतत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर,** आहाहा! क्या फ़रमाते हैं? कोहिनूर का हीरा है अंदर में। नज़र पड़े तो निहाल हो जाये।

ऐसा एक दफ़े बनाव बना कि खेत, खेडू-खेडू, खेत में जाता है। किसान अपने खेत में जाता था, माइल, दो माइल, तीन माइल दूर। रास्ते में ऐसा विचार उसको आया कि, 'अँधा कैसे चलता है?' तो आगे हीरा पड़ा था, तीन हीरा पड़ा था। हें! आहाहा! एक-एक करोड़, पाँच-पाँच करोड़ का एक,

कीमती तीन हीरे पड़े थे। रत्न। उस टाइम बराबर उसको विचार आया, उस वक्त कि, अँधा कैसे चलता है, मैं देखूँ तो सही, प्रेक्टिस तो करूँ। समझे? आँख बंद करके चला, हीरा पीछे रह गया। बाद में आँख खोली तो कुछ हाथ में आया नहीं। ऐसे ये शास्त्र का पठन-पाठन करनेवाला जीव भी, जब व्यवहार की बात आती है, शास्त्र में (तो) बहुत आती है, जानने के लिए, निषेध करने के लिए। उपादेय करने के लिए व्यवहार का प्रतिपादन आया (नहीं)। तो जब व्यवहार की बात आती है, एकदम आँख खोलता है, "हाँ! ये हमारा आया।" क्या आया तुम्हारा? मौत आया। और जहाँ यह बात आवे कि **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर** ये नौ की उत्पत्ति क्यों होती है? अंतर्दृष्टि से तू देखता नहीं है और बहिर्द्रष्टि से देखता है। आहाहा! जो एक **जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़ कर,** वो हीरा कोहिनूर, वहाँ आया, अरे! ये तो निश्चय का कथन है। छोड़ दिया उसको। उसको (छोड़ दिया)। जैसे उसको, खेडू को छोड़ दिया ना किसान ने, ऐसे निश्चय की बात आवे कि आँख बंद हो जाती है और व्यवहार की बात आवे, तो घोड़े पर सवार हो जाता है। आहाहा! आया हमारा, हम भी कहते थे, हम भी कहते थे कि आत्मा परिणाम का कर्ता है और दुःख का भोक्ता (है), हम भी कहते थे। ये शास्त्र में लिखा है। आहाहा! भैया! भैया! यह द्रव्यदृष्टि की बात अलग है और पर्यायदृष्टि की बात अलग है।

व्यवहारनय का कथन जिनागम में बहुत आता है, मगर उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का कथन तो विरल है। क्यांक क्यांक (कहीं-कहीं) है। वो कहनेवाला भी विरल ही है। आहाहा!

तो यह आया, **जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर** यानि अंतर्दृष्टि से नहीं देखा। अंतर्दृष्टि से देखो तो ज्ञायक दिखाई देवे। समझा? तो बहिर्द्रष्टि छूट जाती है। मगर अपना ज्ञायकभाव का, स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर निमित्त का लक्ष्य किया, **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर, स्वयं और पर,** स्वयं और पर, परिणाम। परिणाम स्वयं, स्वयं यानि पर्याय स्वयं पर्याय है। पर्याय तो पोते स्वयं। आत्मा तो एक बाजू रहा, वो तो परिणाम में आता नहीं है। वो तो परिणाम उसको छूता भी नहीं है। आहाहा!

स्वयं और पर जिनके कारण हैं आगे आया ना, ये जीव का विकार, और ये अजीव निमित्त, आया कि नहीं? वही स्पष्टीकरण करते हैं कि ऐसी उत्पत्ति क्यों होती है? नवतत्त्व की उत्पत्ति क्यों होती है? शुभाशुभभाव की उत्पत्ति क्यों होती है? जन्म क्यों होता है? कि अंतर्दृष्टि से तूने आत्मा को आज तक देखा नहीं और बहिर्द्रष्टि से देखने से पुण्य-पाप की उत्पत्ति होगी और पुण्य-पाप मेरा है, ऐसी भ्रान्ति भी होगी। आहाहा!

तो **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं...** पर्याय, जीव का विकार परिणाम और उसमें निमित्त, ये नैमित्तिक (और) वो निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक; निमित्त संबंध से देखने से नैमित्तिकभाव खड़ा हो जाता है और आत्मा के स्वभाव देखने से नैमित्तिकभाव की उत्पत्ति होती (नहीं)। और परिणाम, स्वाभाविक पर्याय की उत्पत्ति संवर की होती है, वो भी नैमित्तिक नहीं है, स्वाभाविक है, क्योंकि वह आत्मा बन जाता है, अभेद से आत्मा बन जाता है। भेद से संवर है, अभेद से तो आत्मा है। भेद से देखने से तो वो परद्रव्य है। क्या कहा? संवर, निर्जरा को भेद से मत देख। आहाहा! वो परिणाम भी कथंचित् अनन्य होकर आत्मा ही है। आहाहा!

जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं आहाहा! एक नैमित्तिक और दूसरा निमित्त, उसमें कहीं स्वभाव नहीं है। निमित्त में भी जीव नहीं आया और नैमित्तिक में भी (नहीं आया)। आया जीव? हमने तो नहीं देखा। आहाहा! है नहीं। कहाँ से दिखाई दे? नैमित्तिक में जीव (नहीं है)। निमित्त में भी जीव नहीं है और नैमित्तक में भी (नहीं है)। है जीव? पुण्य-पाप जीवरूप है? आहाहा!

जिनके कारण हैं ऐसी एक द्रव्यकी पर्यायोंके रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व काल में अहाहा! एक द्रव्य के परिणाम की नज़र करो, तो परिणाम है, निमित्त भी है, नैमित्तिकभाव भी है। है, तो भी... अभी आगे आया, वो दूसरा कोहिनूर का हीरा आया। अभी दूसरा, एक तो आ गया। कि क्या आया? कि **जीवद्रव्यके स्वभाव को छोड़कर**, परिणाम अपने अंतर्मुख न होकर बहिर्मुख होता है, तो निमित्त के संग में चला जाता है परिणाम, तो नौ का भेद खड़ा हो जाता है।

और अभी दूसरा **स्वयं और पर जिनके कारण हैं ऐसी एक द्रव्यकी पर्यायोंके रूपमें अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व कालमें** वो परिणाम है। परिणाम है, मगर यह जीव का परिणाम कहो, मगर जीव उसको मत कहो। संवर, निर्जरा, मोक्ष को जीव का परिणाम कहो, मगर उसको जीव मत कहो। आहाहा! क्योंकि जीव का लक्षण उसमें नहीं है। चेतना लक्षण (उसमें) होने पर भी, नित्य चेतना लक्षण नहीं है। और संवर, निर्जरा, मोक्ष में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक लक्षण होने पर भी, परमपारिणामिकभाव लक्षण इसमें नहीं है। और संवर की पर्याय में अनंतगुण भी नहीं है। अनंतगुण वाला (तो) जीव है, परिणाम जीव (नहीं है)। व्यवहार-जीव अर्थात् is equal to अजीव है। आहाहा! भेद है ना? अभेद होता, तो आत्मा हो जाता है। भेद की दृष्टि छुड़ाने के लिये ये सब बात है।

अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर, देखो! दूसरा कोहिनूर का हीरा आया, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर अपने द्रव्यस्वभाव की अंतर्मुख दृष्टि से देखने से **अस्खलित** आत्मा का स्वभाव जो है "शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।" अस्खलित अनादि-अनंत है, उसमें स्खलना आती (नहीं है)। परिणाम में सुधार-बिगाड़ होता है, मगर भगवान आत्मा में सुधार-बिगाड़ होता नहीं। वो तो अस्खलित है। आहाहा! अनादि-अनंत एक रूप जिसका है।

शुद्ध निश्चय नयसे जीवका स्वरूप (दोहा)
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठोर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि ओर।।२०।।

आहाहा! **अस्खलित,** अपना स्वभाव कभी आत्मा छोड़ता नहीं है। परिणाम भले अपना स्वभाव छोड़कर कषाय आ जावे और बाद में अकषाय भी प्रगट होवे, ऐसी परिणाम में अदल-बदल, बढ़ना-घटना, भले हो, मगर भगवान आत्मा तो अघटित घाट है। अघटित (घाट है), वो टंकोत्कीर्ण परमात्मा है। जैसे प्रतिमा है, ऐसे चैतन्य प्रतिमा अंदर विराजमान (है)। आहाहा! **अस्खलित** यानि स्खलना, शुद्धता को छोड़ता नहीं है आत्मा, कभी। कभी शुद्धता को छोड़ता नहीं है। अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है।

एक जीवद्रव्य के जहाँ जीवद्रव्य आये वहाँ 'एक' विशेषण लगाते हैं। एक ज्ञायकभाव, एक

ज्ञायकभाव। आहाहा! **एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर** समीप यानि अंतर्दृष्टि से देखने से, **अनुभव करने पर,** आहाहा! अनुमान करने पर नहीं। क्या कहा? अनुमान में आ जावे, उससे क्या फायदा? कुछ फायदा नहीं। आहाहा! ऐसा अनुमान तो अनंतबार किया, मगर अनुभव (नहीं हुआ)। आहाहा! अनुमान मानसिक-ज्ञान का व्यापार है, इन्द्रियज्ञान का व्यापार है, भावेन्द्रिय का व्यापार है। भावेन्द्रिय में, मन में अनुमान होता है। ज्ञान में अनुभव होता है। मन का व्यापार परोक्ष है और ज्ञान तो प्रत्यक्ष है। आहाहा! बराबर? अच्छा! बराबर! सबका ऐसा (सिर) डोलता है। सब 'हाँ' बोलते हैं। मेरी नज़र तो सब पर, दूर तक जाती है ना। आहाहा! देखता हूँ।

मुमुक्षुः- काल पका है साहब! काल पका है।

उत्तरः- हैं! अच्छी बात किया! हैं? पुराना पंडित है, बहुत पुराना। 79 years old, (वो तो) शरीर की स्थिति है। आत्मा तो पुराना अनादि-अनंत है। आहाहा! हैं? काल पक गया है।

मुमक्षुः- वाह रे वाह!

उत्तरः- वो अपने भाव से बोलते हैं। ये अपनी बात करते हैं। समझे? मगर साथ-साथ, दूसरों को साथ में लेते हैं। शादी होती है, तो साथ, कोई सगावाला कोई खाना खानेवाला होता है ना? सब साथ में हों तो ठीक। आहाहा! ऐसे काल पक गया है। काल पक गया है, तो ये कुन्दकुन्द की वाणी कान पर आती है। काल पकने के बिना वाणी (कान पर) आती नहीं है। सही है बात! काल पक गया। आहाहा!

अस्खलित भगवान आत्मा के स्वभाव का स्खलन कभी होता नहीं है। ये तो जैसा है, वैसा का वैसा सुखसागर, ज्ञानसागर, आनंदसागर, वीर्यसागर, ये तो सागर है। आहाहा! वो सागर की उपमा है, बाकी सागर की उपमा उसको लागू पड़ती नहीं है। सागर का भी अंत होता है। लोकाकाश तक है। अलोक में तो समुद्र है? (नहीं है।) अकेला आकाश है ना? हें? वो तो लिमिटेड है, सागर तो। ये तो अनलिमिटेड स्वभाव है, उसका। अस्खलित, कभी स्खलित होता नहीं है। परिणाम में मिथ्यात्व तीव्र हो जाये, निगोद के जीव में तीव्र मिथ्यात्व परिणाम होने पर भी, उसका भगवान आत्मा उसके स्वभाव से भरा है। आहाहा! अस्खलित है, स्खलना होती नहीं है। कभी नहीं होती है, उसमें।

एक जीवद्रव्यके स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनुमान नहीं, **अनुभव करने पर...** यानि अनुभव प्रत्यक्ष है, अनुमान परोक्ष है। समझे? परोक्ष में आनंद नहीं आता है। परोक्ष में हर्ष आता है, मगर आनंद (नहीं आता है)। **अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं**। देखो! नवतत्त्व दिखाई नहीं देता है। अंतर्दृष्टि से देखो तो ज्ञायकभाव एक दिखाई देता है। अभेद में कोई भेद दिखता नहीं है। वो परिणाम, अभेद को देखे, वो परिणाम को... परिणामी परिणाम को नहीं देखता है, परिणाम अभेद सामान्य को देखता है, तो ये परिणाम शुद्ध हो जाता है, अपने आप। वो परिणाम भी आत्मा हो जाता है। अनन्य, कथंचित्, आहाहा! स्पर्शता हुआ भी नहीं स्पर्शता है। आहाहा!

ये नवतत्त्व के भेद, अभेद में भेद दिखाई नहीं देता। अंतर्दृष्टि से अनुभव करने पर मैं कौन हूँ? मैं तो ज्ञानानंद परमात्मा हूँ। मैं-पना, अपनापना शुद्धात्मा में आ जाता है। परिणाम में अपनापना अनंतकाल से था, उसका क्षय हो जाता है, व्यय हो जाता है। अपनापना गया। परिणाम रह गया मगर परिणाम में अपनापना (चला गया)। देखो! परिणाम रह गया और अपनपना चला गया, उसका नाम

मोक्षमार्ग है। उसका नाम वो वीतरागभाव है।

बाबूजी:- हटाना किसी को नहीं है, इसलिए तो अकर्ता है।

उत्तर:- हाँ! हटाना नहीं है। हटाना नहीं है, इसलिए तो अकर्ता है। जो हटावे, तो कर्ता बन जाये आत्मा। आहाहा! उत्पादक भी नहीं है और किसी को व्यय करने का है (नहीं)। ग्रहण करनेवाला भी नहीं और छोड़नेवाला भी नहीं। आहाहा!

इसलिए इन नवों तत्त्वों में बहुवचन है। तत्त्वों में, तत्त्वों में तत्त्व है। नवतत्त्व बहुवचन है, उसमें एकवचन तत्त्व विराजमान है। आहाहा! **इन नवों तत्त्वों में, नवों तत्त्वों में भूतार्थ नयसे**, आहाहा!

एक दफ़े तू इन्द्रियज्ञान से देखना बंद कर दे प्रभु! आहाहा! इन्द्रियज्ञान से आत्मा पर को जानता ही नहीं है। पर को जानने के लिये इन्द्रियज्ञान साधन नहीं है। वो भी इसके बाद ३१ गाथा लेने का भाव आया है, इसलिये उसकी छाया आती है। शरुआत हो गई। आहाहा! ३१ गाथा। आहाहा! इन्द्रियों को जीतने से मोह का क्षय हो जाता है। इसप्रकार, **इसलिए इन नवों तत्त्वों में भूतार्थ नयसे** अंतर्दृष्टि से देखो, शुद्धनय से देखो, अतीन्द्रियज्ञान से देखो। इन्द्रियज्ञान से आत्मा दिखाई नहीं देता है, क्योंकि इन्द्रियज्ञान आत्मा की जाति (का) नहीं है। वो ज्ञायक का भाव नहीं है, ज्ञेय का भाव है। रागादि भावक का भाव है और इन्द्रियज्ञान ज्ञेय का भाव है। इसलिए वह ज्ञेय है, ज्ञान (नहीं है)। आहाहा!

एक जीव ही प्रकाशमान है। आहाहा! नवतत्त्व कोई दिखाई देता नहीं (है), तो एकांत हो जायेगा। द्रव्य को भी जानना चाहिए और पर्याय को भी जानना चाहिए। प्रमाण का पक्षवाला है। आहाहा! प्रमाण के पक्षवाले को परिणाम से आत्मा भिन्न है, उसमें एकांत की गंध आती है। मगर सम्यक्एकांत की सुगंध उसको आती (नहीं है)।

जीव ही प्रकाशमान है। और कोई दिखाई देता नहीं है। निर्विकल्पध्यान जब आता है, शुद्धोपयोग होता है, तब अकेला ज्ञायकभाव मैं हूँ, ऐसा परिणमन हो जाता है, अंदर में, आहाहा! **नवों तत्त्वों में भूतार्थ नयसे एक जीव ही प्रकाशमान है। जीव ही,** ऐसा। सम्यक्एकांत! आत्मा दिखता है और नवतत्त्व दिखता नहीं है, क्योंकि एक में अनेक की नास्ति है, इसका नाम अनेकांत है। एक में अनेक की नास्ति, उसका नाम अनेकांत है। आहाहा!

वो प्रमाणवाला अनेकांत अलग है और नयवाला अनेकांत अलग चीज़ है। वो अनेकांत, प्रमाण का जानने की बात है और इधर तो प्रयोजन की सिद्धि करने के लिए ज्ञायकभाव में प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है (ऐसा कहा)। आहाहा! ऐसे नवतत्त्व आत्मा में नहीं हैं। एक आत्मा को देखे तो आत्मा ही आत्मा दिखाई देता है। अंदर में गुणभेद दिखाई नहीं देता है। ध्रुव में अनंतगुण हैं। अनंतगुण हैं, मगर गुणभेद दिखाई नहीं देते हैं, तो उत्पाद-व्यय तो कहाँ से दिखे? क्योंकि उत्पाद-व्यय तो ध्रुव हैं ही नहीं। क्या कहा? उत्पाद-व्यय दिखता नहीं है, क्योंकि ध्रुव में उत्पाद-व्यय है ही नहीं। हाँ! उसमे अनंतगुण हैं। अनंतगुण हैं, मगर गुणभेद दिखाई देता (नहीं है)। जो, गुणभेद को जो देखता है, उसको आत्मा दिखाई नहीं देता है। आहाहा!

मुमुक्षु:- तो क्या दिखाई देता है?

उत्तर:- अभेद सामान्य चिदानंद भगवान आत्मा दृष्टि में आता है और अतीन्द्रिय आनंदमूर्ति

दिखाई देती है। आनंदमूर्ति मैं हूँ। बस! और कोई दिखाई देता नहीं है। आहाहा! बाहर निकल कर ये शास्त्र लिखता है। अंदर में से बाहर आया ना, तो दूसरे को समझाने की करुणा भी आ जाती है। ऐसा अस्थिरता का भाव होता है ना, यह योग्यता है। वो भी योग्यता है, उसके स्वकाल में आकर निर्जरा हो जाती है। बंध का कारण (नहीं है)। ऐसा करुणा का भाव भी साधक को आता है। सचमुच तो उसका ज्ञान आता है। वो करुणा का भाव भी निर्जरा का कारण है, बंध का कारण नहीं है। आहाहा!

इसप्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ, आहाहा! एकत्व, एकपना। शुद्धनय आत्मा को एक है, ऐसा दिखाती है। आहाहा! **होता हुआ, शुद्धनय रूप से अनुभव किया जाता है**। आत्मा का अनुभव तो व्यवहारनय से होता नहीं हैं। इन्द्रियज्ञान से आत्मा का दर्शन नहीं होता। इन्द्रियज्ञान सचमुच ज्ञान ही नहीं है, ज्ञेय है। वो अभी आयेगा ३१ गाथा में। आहाहा!

और जो यह अनुभूति है, जो अनुभूति हुई आत्मा की **सो आत्मख्याति (आत्माकी पहिचान) ही है**, आत्मा की प्रसिद्धि है। अनुभूति ने अनुभूति को प्रसिद्ध नहीं किया, अनुभूति ने आत्मा की प्रसिद्धि की, आहाहा। मैंने आत्मा को अनुभूति द्वारा प्रसिद्ध किया, तो मेरा कोई टका (परसेंटेज) तो रखो? कि तेरा टका (परसेंटेज) कुछ नहीं है। आहाहा! तूने जो प्रसिद्ध किया शुद्धात्मा, वो ही मैं हूँ। आहाहा! भले तूने प्रसिद्ध किया, मगर प्रसिद्ध हुआ तो मैं। प्रसिद्ध कौन हुआ?

मुमुक्षुः- मैं!

उत्तर:- आहाहा! ऐसा लिखा है इसमें।

बाबूजी:- अनुभूति द्रव्य बन गई।

उत्तर:- अनुभूति द्रव्य बन गई। अनुभूति पर्याय अब नहीं रही। आहाहा!

बाबूजी:- और क्या चाहिए उसे?

उत्तर:- इसके अलावा क्या चाहिए? जो चाहता था, वो हो गया। कार्यसिद्धि हो गई। बस! इतना है। संसार का अभाव हो जाता है। एक समय आत्मा का स्पर्श होता है, उसको रिज़र्वेशन (reservation) होता है। सिद्ध परमात्मा हैं ना, जाना है ना वहाँ? समश्रेणी जाता है, आत्मा, सिद्धालय में। बुकिंग (booking) इधर होती है, बुकिंग। रिज़र्वेशन (reservation) होता है। एक दफ़े आत्मा का अनुभव हुआ, खलास। देखो! ये ट्रेन में बहुत भीड़ होती है, तो तीन महीने पहिले किसी ने टिकट-रिज़र्वेशन करा लिया, जेब में है। और बाद में, कोलाहल (शोर) मच गया कि टिकट नहीं मिलती है, टिकट ही नहीं मिलती है। वो तो निराकुल बैठा है क्योंकि टिकट जेब में है। टिकिट (जेब में है)। कब मोक्ष होगा, उसकी चिंता सम्यग्दृष्टि करता नहीं, क्योंकि टिकट जेब में है। आहाहा!

आत्मा का स्वरूप एक दफ़े जिसने अनुभव में ले लिया, आहाहा! अल्पकाल में कोलकरार है कि उसकी मुक्ति होने वाली है। स्वकाल में मुक्ति होगी। आहाहा! ऐसा ज्ञान भी उसको है, इसलिए जल्दी भी नहीं करता है और प्रमाद में भी नहीं रहता है। जल्दी करे तो कर्ताबुद्धि और प्रमाद में रहे तो आलसी हो जाता है। प्रमाद भी नहीं और जल्दी भी नहीं, ऐसे मध्यस्थ होकर आत्मा को जानते-जानते मस्त रहता है। आहाहा! आत्मा को जानते-जानते, मस्त रहता है वो तो।

अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है, और जो आत्मख्याति है सो

सम्यग्दर्शन ही है। जिसको आत्मा कि प्रसिद्धि ज्ञान में आ गयी, मैं ज्ञायक हूँ, तो उसका नाम सम्यग्दर्शन है... **ही है**। **इसप्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है - बाधा रहित है** । अनुभूति का नाम ही सम्यग्दर्शन। अनुभूति हुई, आत्मख्याति हुई, तो उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यहाँ कई तर्क लगाते हैं कि, सम्यग्दर्शन लिखा है मगर चारित्र लिखा (नहीं है)। अरे भैया! तीन अंश साथ में जन्मता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। मगर मुनिराज के योग्य स्थिरता नहीं है, थोड़ी स्थिरता है। एक कषाय का अभाव हुआ, स्वरूपाचरणचारित्र है, तो वहाँ तो सम्यग्दर्शन की मुख्यता है। मिथ्यात्व गया और सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। तो **इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष, बाधा रहित है।**

अभी भावार्थ थोड़ा मैं ले लूँ। भावार्थ में, अच्छी बात, कई बात अच्छी है। थोड़ा ले लूँ। बहुत विस्तार नहीं करूँगा।

मुमुक्षुः- नहीं! नहीं! विस्तार से लो। भाई! कल से ३१ गाथा शुरू करनी है।

उत्तरः- अच्छा! कोई परेशानी नहीं। भले! तो कल से ३१ गाथा सब पढ़कर आवें। ठीक है! सब पढ़कर आवें। सब तो नहीं, थोड़ा-थोड़ा पढ़कर आयेगा।

भावार्थ! वो तो आनंद की बात करता हूँ। मैं डाँटता नहीं हूँ। आनंद की बात करता हूँ। आनंद करते_करते ही आनंद प्रगट हो जाता है। आहाहा! आकुलता से आनंद होता नहीं है।

भावार्थः- इन नव तत्त्वों में... देखो! तत्त्वों आया ना, बहुवचन। तो नौ हो गया ना? अचलजी! **इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो...** व्यवहारनय से देखो तो नवतत्त्व आत्मारूप दिखता है। नवतत्त्व आत्मा रूप दिखता है और व्यवहारनय की आँख बंद कर दो और एक शुद्धनय की आँख खोलो, तो **शुद्धनय से देखा जाये तो, जीव ही,** 'ही' शब्द, 'ही' आया, 'भी' नहीं। सम्यक्एकांत का द्योतक है। 'ही' है ना, ये सम्यक्एकांत का द्योतक है। **जाये तो, जीव ही एक चैतन्यचमत्कारमात्र,** भावमात्र, **चैतन्य चमत्कारमात्र** यानि उसमें नवतत्त्व का भेद दिखता नहीं है। अभेद सामान्य टंकोत्कीर्ण परमात्मा दिखाई देता है। आहाहा! **चैतन्यचमत्कार** हो! ये चैतन्य का चमत्कार है। **चैतन्यचमत्कारमात्र** मात्र यानि नौ दिखता नहीं है। निषेध करने के लिए मात्र लिखा। एक दिखता है और नौ दिखता नहीं। इसलिए मात्र शब्द जोड़ दिया। Only, फ़क्त। एक दिखता है, अंतर्दृष्टि से। **चैतन्यचमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है**, आहाहा! प्रगट तो था, मगर शुद्धनय से देखा, (तो) प्रगट हो गया। पर्याय में दिखाई दिया तो प्रगट हो गया। हमको दिखाई दिया, बस, तो प्रगट हुआ। **इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न,** इसके अलावा, अतिरिक्त। हैं? आहाहा! नवतत्त्व कुछ दिखाई नहीं देता, पर्याय दिखाई नहीं देती, तो एकांत नहीं हो जाएगा? आहाहा! ये प्रमाण के पक्षवाले का काम नहीं है। हाँ! ये शुद्धनय का पक्ष आवे, तो अनुमान तो आ सकता है। मगर प्रमाण के पक्षवाले को शुद्धात्मा अनुमान में भी नहीं आता है।

मुमुक्षुः- परम सत्य बात!

बाबूजीः- नवतत्त्व को देखता है, तो (वहाँ) एकांत नहीं होता?

उत्तरः- हाँ! नवतत्त्व को देखता है, वहाँ एकांत नहीं बोलता है। मगर एक आत्मा को देखो तो एकांत हो जायेगा। बोलो! आहाहा! ये कजियारा होता है ना? कजियारा क्या (बोलते हैं)? झगड़ालू होता

है ना? गुरूदेव दृष्टांत देते थे। गुरूदेव दृष्टांत देते थे, एक पिता को दो पुत्र थे। दो पुत्र थे। वो तरबूज़ आया। तरबूज़ को तरबूज़ कहते हैं ना? तरबूज़! तो उसमें से (दो) चीर बनाया पिताजी ने। समझे? माताजी ने बनाया। तो एक चीर तो लम्बी और एक चीर छोटी, मगर दोनों का वजन समान। दोनों का वजन (बराबर)। एक का लम्बा और एक छोटा मगर मोटा। मोटा। समझे? हाँ! मगर वजन दोनों का समान। तो वो माता-पिता जानते थे कि ये लड़नेवाला एक छोकरा है, लड़ेगा। तो उसको पहले कहा कि बेटा तू ले ले पहले। क्योंकि झगड़ालू है ना। समझे? तो एक चीर उसने ले लिया। समझे? छोटा (मगर मोटी) फाँक मिली, ले लिया। लम्बी रह गयी। तो उसने (दूसरे ने) लम्बी ले ली। हाँ! हाँ! मेरे को वो चाहिए, ये नहीं चाहिए। अच्छा! ये ले ले। तो लम्बी ले ली और छोटी फाँक उसको दिया। नहीं! नहीं! ये नहीं। वो दो। झगड़ा ही करता है। वो झगड़ा ही करता है। अज्ञानी जीव अनादिकाल से उसका कार्य, झगड़े में जिंदगी बिताता है। और ये पर्याय पूरी होकर, आहाहा! कहाँ चला जायेगा, वो मालूम होता नहीं है। आहाहा!

चैतन्यचमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है, इसके अतिरिक्त एक के अलावा **भिन्न-भिन्न नव तत्त्व कुछ भी दिखाई नहीं देते।** भाई! व्यवहारनय से दिखाई देते हैं, ऐसा क्यों नहीं लिखा? कि व्यवहारनय अस्त हो गई है। व्यवहारनय उदय नहीं हुई, अभी। व्यवहारनय का अस्त होता है, तब शुद्धनय का उदय हो जाता है। आहाहा! एक साथ दो का उदय होता (नहीं)। आहाहा!

ये तो कोई अलौकिक समयसार है। समयसार....

भिन्न भिन्न नव तत्त्व कुछ भी दिखाई नहीं देते। तो गौणरूप से तो दिखाई देते हैं, ऐसा लिखो। व्यवहारनय से दिखाई देवे, ऐसा तो लिखो। अरे! दिखाई ही नहीं देता है, तो मुख्य-गौण की बात है ही नहीं। वो आँख बंद हो गई, वो आँख, चक्षु, सर्वथा बंद हो गई। भेद का लक्ष्य छूट गया, भेद का लक्ष्य छूट (गया)। अभेद का लक्ष्य आया, तो अभेद ही दिखाई देता है, भेद दिखाई देता (नहीं है)। जिसके ऊपर लक्ष्य है, वो ही दिखाई देता है, जिसके ऊपर लक्ष्य नहीं है, वो होने पर भी दिखाई (नहीं देता है)। आहाहा!

अद्‌भुत बात है! डाक्टर साहब! धन्नालाल साहब पुराने हैं। प्रयोजनभूत बात चलती है। आहाहा! अप्रयोजनभूत बात का तो ज्ञान, यानि अज्ञान, बहुत किया। अप्रयोजनभूत, ये जम्बूद्वीप कैसा है और महाविदेहक्षेत्र कैसा है, ये कैसा है, ये मेरूपर्वत कितना है और वहाँ कितना है, भोगभूमि में आयुष्य कितना है और स्वर्ग में आयुष्य कितना है? आहाहा! प्रमाण से बाहर चला गया। प्रमाण से बाहर चला गया। आहाहा!

जयपुर में एक दफ़े कहा, उसका पत्र भी आया है, 'अर्चना' का। कल पत्र मिला। भाईसाहब की लड़की, जयपुर में छोटी (थी), उस समय, उसका सगपण (सगाई) नहीं हुई था। पुत्री और माता दोनों बैठी थीं। मैं तो जानता नहीं था। व्याख्यान में कहा था कि "प्रमाण से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं।" उसने पकड़ लिया। तो हमारे रूम पर सब थोड़े मुमुक्षु तो आवे ना, चर्चा करने के लिए, तो बहने-भाई बैठे थे। उसमें उसने कहा कि, 'भाई साहब! आपने कहा, प्रमाण से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं।' ओहोहो! इतना उसको उत्साह आ गया। आहाहा! आज भी पत्र में

वो लिखती है। ऐसे ही कोई पकड़ने वाला तो होता है। वाणी बाँझ नहीं होती है, ग्रहण करनेवाला होता है। कुन्दकुन्द की वाणी, वाणी, ऐसे निकले और कोई ग्रहण न करे?

मुमुक्षुः- ऐसा नहीं होता है।

उत्तरः- ये कुन्दकुन्द की वाणी है ना! आहाहा! जिनवाणी है ना! आहाहा!

तो **दिखाई नहीं देते। जब तक इसप्रकार**, इसप्रकार एक को नहीं देखता है, वहाँ तक **इसप्रकार जीव तत्त्वकी जानकारी जीवको नहीं है तब तक वह व्यवहारदृष्टि,** पर्यायदृष्टि है। नवतत्त्व को जानता है। आहाहा! नवतत्त्व को जानने से पंडित होता है, मगर ज्ञानी होता (नहीं है)। यह छहद्रव्य, नवतत्त्व को जाना, मगर एक आत्मा को जाना नहीं। तो कुछ जाना (नहीं)। मोतीलालजी साहब! आहाहा! एक को जाना, सो सबको जान लिया, आहाहा! कुछ बाकी रहता नहीं है। आहाहा!

जब तक इसप्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है तब तक, limit (लिमिट)। कल तक भले नहीं जाना, मगर आज जानने में आ सकता है, अभी आ सकता है। उसमें कोई काल-दोष नहीं अड़ता है। पंचमकाल नहीं अड़ता है, कर्म का उदय नहीं अड़ता है ,देह की, द ेह में cancer (कैंसर) होवे, तो भी अड़ता नहीं है। निर्धनता अड़ती नहीं है, कम क्षयोपशम अड़ता नहीं है। आहाहा! संस्कृत पढ़ना चाहिए और जयपुर में भर्ती करना चाहिए और उपाध्याय और क्या कहा? आचार्य और शास्त्री और आहाहा! कोई ज़रूरी नहीं है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जीव चार गतिवाला, कोई भी मनवाला प्राणी, अपने आत्मा का अनुभव कर सकता है। आहाहा!

तब तक वह व्यवहारदृष्टि है, पर को जानने में रुक गया, स्व को भूल गया। **भिन्न भिन्न नव तत्त्वों को मानता है**। जानता है और मानता भी है। **जीव पुद्गल की बंध पर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं;** पर के संबंध से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। **किन्तु जब शुद्धनयसे** यानि अंतर्मुखी ज्ञान से...जो ज्ञान बहिर्मुख था, वह ज्ञान अंदर में झुकता है। आहाहा! तो **शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं;** अवस्तु हो गईं। वस्तु (नहीं रही)| आहाहा!

मुमुक्षुः- अपने अभेद अखंड स्वभाव में कहाँ है वो?

उत्तरः- वो कहाँ है? आहाहा! यह **वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त-नैमित्तिक भाव से हुए थे, इसलिये जब वह निमित्त-नैमित्तिक भाव मिट गया** आहाहा! **मिट गया,** आहाहा! **तब जीव-पुद्गल भिन्न भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती**।

वस्तु तो द्रव्य है, देखो! अभी एक कोहिनूर का हीरा आता है, कोहिनूर का हीरा। भरा है अंदर में। आहाहा! **वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव** द्रव्य का निजभाव **द्रव्य के साथ ही रहता है**। परम-पारिणामिक स्वभावभाव द्रव्य के साथ अनादि-अनंत रहता है। वो नवतत्त्व अनादि-अनंत साथ में रहता (नहीं है)। संयोग रूप भी नहीं रहता है। तादात्म्य रूप तो नहीं रहता है, एक समय के लिए भी, आहाहा! मगर संयोग संबंध भी छूट जाता है। उत्पाद-व्यय संयोग है, स्वभाव (नहीं है) आहाहा! ध्रुव स्वभाव है। उत्पाद-व्यय तो आता है और जाता है। 'कोई आवे और कोई जावे, मैं तो जाननहार हूँ।' आहाहा!

वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव, ये नवतत्त्व, द्रव्य का, आत्मा का निजभाव नहीं है। पराया भाव है। आहाहा! परभाव है, परद्रव्य है, हेय है। आहाहा! इसका अर्थ उसमें अपनापन नहीं करना, अपनापन नहीं करना। बस, इतना है। **द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव का तो अभाव ही होता है**, **इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही** आहाहा! **सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।** सम्यग्दर्शन यानि आत्मा का अनुभव हुआ, तो अनुभव में जो जानने में आया, तो जानने में आया, वही मैं हूँ, उसका नाम प्रतीति या उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न भिन्न नव पदार्थों को जाने, भिन्न-भिन्न, ये पुण्य-पाप हैं, ये आस्रव है, ये बंध है, ये संवर है, इसका यह लक्षण है, उसमे ये निमित्त है, उसमें ये निमित्त है। आहाहा! ऐसे ज्ञान को खंड-खंड करता हुआ आत्मा को नष्ट कर देता है। आहाहा!

जब तक भिन्न भिन्न नव पदार्थों को जाने, और शुद्धनय से आत्मा को जाने तब तक पर्याय बुद्धि है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी रहता है। आहाहा! अभी नवतत्त्व को जानने का बंद कर दे। आहाहा! और एक शुद्धात्मा को अंतर्दृष्टि से देख, तो सम्यग्दर्शन होगा और अल्पकाल में मुक्ति होगी।